।। श्री गोडी पार्श्वनाथाय नमः ।।

प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः

श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी विरचित

श्री चम्पकमाला चरित्र का

(हिन्दी भाषानुवाद)

संपादक—

मुनि श्री जयानंदविजयजी म०

।। श्री गोडी पार्श्वनाथाय नमः ।।

प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरसद्‌गुरूभ्यो नमः

श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी विरचित

श्री चम्पकमाला चरित्र का

(हिन्दी भाषानुवाद)

प्रेरक संपादक—

मुनि श्री जयान्दविजयजी म०

भाषानुवादकर्त्री—

विदुषी साध्वीजी श्री ललीतश्रीजी की शिष्या

साध्वी श्री मणिप्रभाश्रीजी

पुस्तक का नाम—

श्री चम्पकमाला चरित्र का हिन्दी भाषानुवाद

प्रेरक संपादक—

मुनि श्री जयानन्दविजयजी म०

सुकृत के सहयोगी—

सांकलचन्द, कान्तिलाल, अम्बालाल, महेन्द्रकुमार, तेजपाल बेटा पोता सेसमलजी फुआजी आहोर (राज.)

प्रकाशक—

श्री गुरु रामचन्द्र प्रकाशन समिति
भीनमाल (राज०)

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

कांति ज्वेलर्स
घेलादेवीजी चौक
कल्यान (महाराष्ट्र)

जे. के. संघवी. शाश्वत धर्म कार्यालय
जामली नाका
थाना (महाराष्ट्र)

शा देवीचन्द छगनलालजी
सदर बाजार **भीनमाल** (राज.)

वीर सं. २५१८ विक्रम सं. २०४८ राजेन्द्र सं. ८६ सन् १९९२

मुद्रक—गौतम आर्ट प्रिन्टर्स ब्यावर (राज०) ३०५९०१

सादर–समर्पित

**परम पूज्य पिताजी श्री सेसमलजी फुआजी श्री श्री-
माल की पुण्य स्मृति में**

आप श्री के उपकार का प्रत्युपकार करने में
तो हम असमर्थ है फिर भी आप श्री
की पुण्य स्मृति में यह पुष्प सादर
समर्पित कर इस पुस्तक के
वांचन मनन से उत्पन्न
पुण्य आप जहां हो
वहां आपके
हित में
सहायक
बनें।

फर्म :

कांति ज्वेलर्स
घेलादेवजी चौक
कल्यान जि. थाना (महा०)

शा कांतिलाल सेसमलजी
सूरजपोल
आहोर (राज०)
जिला जालोर

यही :

**कांतिलाल तेजपाल श्री श्री-
माल परिवार**

प्रस्तावना

तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं

तपों में सर्व श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य नामक तप है ।

कर्मक्षय में तप को सर्व श्रेष्ठ साधन माना है । जिस तप में अन्तर्मुहूर्त से लगाकर मास, छमास एवं वर्षभर चारों प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग का विधान है ऐसे कठिनतम तप के द्वारा कर्मक्षय का निरूपण करने वाले महापुरूषों ने जहां आहार के त्याग की कोई बात नहीं है, ऐसे ब्रह्मचर्य को तपधर्म में सर्व श्रेष्ठ दर्शाया है उससे ही ब्रह्मचर्य की महत्ता स्पष्ट हो जाती है ।

अनादि अनंतकाल से ब्रह्मचर्य (शील) का पालन करना कठिनतम ही है । सामान्य व्यक्ति इस ब्रह्मचर्य धर्म का पालन तीन करण तीन योग से नहीं कर सकता । चार चार मास के उग्र तपस्वी भी इस व्रत को तीन करण तीन योग के पालन में अपने आपको निर्बल सिद्ध कर चुके हैं ।

तीर्थङ्करों ने जिस धर्म की महत्ता स्व मुख से दर्शायी हो, गणधरों ने जिसे सूत्र रूप में गुंफित करके हम तक पहुँचाई है और जिसका परिपालन विकट प्रसंगों में भी करके आदर्श खडा किया हो अनेक सत्त्वशाली भव्यात्माओं ने उसमें एक है **"चम्पकमाला"**।

एक साधारण कुल में जन्मी चम्पकमाला अपनी ही बड़ी बहन की बदचलनता को देखते हुए भी जिसने शील धर्म को घूट-घूट कर पी लिया हो ऐसी सतियों में स्थान प्राप्त **चम्पकमाला** की कथा पूज्यपाद आचार्यदेव श्री यतीन्द्रसूरीश्वरजी म. सा ने

संस्कृत भाषा में निबद्ध की है। यह कृति विद्वद् भोग्य है। इसमें गुरूदेव श्री की विद्वता प्रतिभा, साहित्य सर्जन की कला का दिग्दर्शन हो रहा है।

शा. बाबूलालजी अमीचन्दजी बाफना परिवार के द्वारा भीनमाल के चातुर्मास में साध्वीजी श्री स्नेहलता श्रीजी सा. तत्त्वलोचनाश्रीजी सा. मणिप्रभाश्रीजी आदि ठाणा अध्ययन वांचन हेतु दोपहर में आते थे। उस समय चम्पकमाला चरित्र का वांचन किया और एक विचार आया कि-"यह चरित्र विद्वद् भोग्य है संस्कृत के विशेष विद्वान् इसका परिपूर्ण लाभ ले सकते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद प्रकट हो जाय तो विशेषकर इस चरित्र का अध्ययन करने वाले साधु साध्वी अध्ययनार्थी एवं पठनार्थी के लिये यह चरित्र सरल हो जायगा।" इस हेतु साध्वीश्री मणिप्रभाश्रीजी ने वांचन के बाद इस का अनुवाद लिखना प्रारंभ किया। उनकी लेखन शैली व भाषा की उच्चता प्रशंसनीय है हो। पाठक गण इसका स्वयं अनुभव करेंगे।

इसको छपवाने का लाभ शा. कांतिलाल सेसमलजी आहोर वालों ने लिया है। एतदर्थ उनको धन्यवाद। इसी प्रकार अपनी लक्ष्मी का ज्ञानार्जन हेतु उपयोग करते रहे। यही।

थराद
चैत्र सुद ५
२०४६

जयानन्द

शुद्धि-पत्रक

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	चारित्र	चरित्र
६	५	स्वण	स्वर्ण
७	११	हाने	होने
८	१६	नाराणां	नराणां
१५	२०	हो	ही
१६	१२	जसे	जैसे
२४	१६	असाधरण	असाधारण
२४	२१	अपेक्षा	उपेक्षा
२५	१८	जाती ।	जाती है ।
३०	२४	अपेक्षा	उपेक्षा
३४	२१	त्यागी	त्यागे हुए
३५	१३	बालक	बालक रागरूप
३९	५	सिद्धाज्जन	सिद्धाञ्जन
३६	११	क्रीडा	कीडा
४१	२	(स्त्रियो) को	(स्त्रियो को)
४४	६	कुलाङ्गाना	कुलाङ्गना
४७	१३	कुसुमाला	कुसुममाला
५२	२१	दन	दीर्न
५६	१४	कहलाते हैं ।	कहलाता है ।
५६	१७	जैने	जैसे
५८	११	समान	सम्मान
६१	२१	सरस का	सरस

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	२६	थाली	थाल
६३	६	ब त	बहोत
६३	२२	सौभ्य	सौम्य
६४	१५	उपेक्षाकार	उपेक्षाकर
७४	२५	स्वर्गङ्गाता:	स्वर्गङ्गता:
७६	१६	दिशओ	दिशाओं
६०	१७	यह में	में यह
६४	४	श्लाद्या	श्लाधा

॥ श्री चम्पकमाला चारित्र का हिन्दी भाषानुवाद ॥

यस्योदार गुणावलीमनुपमां लोकत्रयीव्यापिकां,
गायङ्गायमकल्मषाः शिवपदं प्रापुः कियन्तः परे ।
तेजः पुञ्जमयं प्रणम्य तदहं भास्वत्प्रभाजित्वरं,
कुर्वे चम्पकमालिका सुचरितं सद्धीमतां प्रीयते ।।

अन्वयः—यस्य लोकत्रयीव्यापिकां, अनुपमां उदारगुणावलीं गायङ्गायं कियन्तः परे शिवपदं प्रापुः । तत् तेजः पुञ्जमयं भास्वत्प्रभा जित्वरं प्रणम्य अहं सद्धीमतां प्रीतये चम्पकमालिका सुचरितं कुर्वे ।

अनुवाद—जिसकी तीनों लोको में व्याप्त अनुपम गुणों की श्रेणी का बारम्बार गुणगान करके कितने ही अन्य लोग मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं । उन सूर्य की प्रभा को जीतने वाले तेज के पुञ्जवाले (गुरू) को नमस्कार करके मैं सद्बुद्धिमानो के आनंद हेतु चम्पकमालिका का सुचरित्र कर रहा हूं । (लिख रहा हूं)

अब प्रथम शिष्टाचार के परिपालन एवं विघ्नों के विनाश हेतु अपने गुरू के गौरवशाली पद को नमस्कार रूपी मंगल किया । सूची कटाह के न्यायानुसार शुरू किये जाने वाली कथा का प्रधान अंग होने से शील के महात्म्य का वर्णन करते हैं ।

जबकि पहले के अत्यंत विद्वान् शिष्टपुरूषों ने चार प्रकार के धर्म में से सर्व जीवों के लिए उपकारी होने से दान की महिमा

प्रथम बताई। फिर भी सब शास्त्रों के पार को देखनें वाले महान् आप्तपुरूषों ने (तीर्थंकरो ने) उससे भी (दान से भी) शीलव्रत को ही दुष्कर (दुःसाध्य) बताया और उन्होंने निश्चय ही इस उन्नतशील की रक्षा के लिए ही नौ प्रकार की गुप्ति बनाई। जिनका बाल्यकाल से लेकर उज्जवल शील रूपी मद अत्यन्त अखण्डित हैं। वे ही जीव इस लोक और परलोक में धन्यवाद के पात्र हैं। ज्यादा तो क्या ? शियल ही चारित्र रूप शरीर का प्रिय प्राण हैं। जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर शोभा नहीं देता उसी प्रकार शील के बिना सुन्दर चारित्र भी निरर्थक हैं। अन्य व्रतादि के भग्न होने पर भी उनका संधान (जुडना) कभी तो हो ही जाता हैं, किन्तु इसके (शील के) भग्न होने पर तो, परिपक्वता को प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तन के समान पुनः जोडने के लिए कोई भी समर्थ नहीं हैं। सुन्दर प्रकार से आराधित इस शील का लोकोत्तर अति अद्भुत प्रभाव तीनो लोक में अहोनिश (सदैव) जागृत है, यह बात भव्यात्माओं को सुप्रतीत (ज्ञात) ही हैं। इस प्रकार इस सत्शील की प्रधानता जगत में तीर्थंकरों के मुख से प्रकाशित होने पर भी मैं अपनी बुद्धि अनुसार इसका संक्षेप में वर्णन कर अब प्रस्तुत कथा का वर्णन करता हूं। वह इस प्रकार हैं—

इस जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में मानों लक्ष्मी देवी का मनोहर घर ही न हो, ऐसा सकल देशो में मुकुट समान मालव नाम का जनपद हैं। जिसकी अनुपम समृद्धि का अंशमात्र भी देवलोक में अप्राप्य हैं। यह अपनी अतुल्य बुद्धि के द्वारा अमरपुरी (अल्कापुरी) को भी लज्जित करती हुई अत्यन्त प्रकाशित हो रही है, इसलिए स्वर्ग से भी गरिष्ठ मालव जनपद हमेशा देदिप्यमान हैं। स्वर्ग में जिस प्रकार विमान शोभा करते हैं, उसी प्रकार

जहां देवो के भी चित्त को हरण करने वाले विशाल नगर अत्यन्त शोभित है और जहां अति विशाल नगर कमलों से युक्त हमेशा निर्मल जल से परिपूर्ण असंख्य सरोवर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। या अतीव शोभायमान हैं। उन नगरों में सकल शास्त्रों के पारङ्गत विद्या विचक्षण कुशल देवों के समान ब्राह्मण अतीव शोभा दे रहे हैं, उनमें गगनचुम्बी सात-आठ भूमि वाले प्रासाद शोभा दे रहे हैं। जिन नगरों में वैमानिक अप्सराओं के समान सौन्दर्य से उन्नत, सुन्दर शील से सुशोभित, स्थिर यौवन वाली और कलाओं से युक्त नारियां मौज कर रही है। निश्चय ही इस देश में छोटे गांव भो दूसरे देशों के नगरों से भी दीर्घ विषयग्रामों के समान विकसित है। जिस प्रकार विषयग्राम में सुख के योग्य अतिसुन्दर विविध प्रकार के विषय होते हैं। उसी प्रकार जहाँ मालवपुरी में कितनो ही स्त्रियाँ, बालिकाएँ, सुकोमल अंगवाली, कितनी ही बिजली के समान गौरवर्ण वाली, तारूण्य से परिपूर्ण, सुसज्जित, युवा पुरूषों के मन को हरण करने वाली हमेशा शोभित हो रही हैं। जहां विविध प्रकार के सुन्दर बगीचे, वापिकाएँ, कूएँ, सरोवर, अनेक मणिमय जिनेश्वर के गगन चूम्बी चैत्यो से सुशोभित छोटे गांव भी विद्वानों के चित्त में अतिशीघ्र आनंद को उत्पन्न करने में कुशल हैं, तो वहां महानगर देवनगरी से अतिशय होने वाले हो इसमें क्या आश्चर्य हैं? अधिक तो क्या? जहां जाने से खुश होने वाले कवि स्वर्ग की भी इच्छा नहीं रखते हैं, इसीलिए मैं मानता हु कि सुर असुरो के समुदाय से मंथन किये जाने वाले रत्नाकर ने (समुद्र) उसकी भीति से ही अपने अन्दर रहे हुए सारभूत रत्नो और अमृत को वही पर रहने दिया। (अर्थात् बाहर नहीं निकाले) उस देश के पुरूष अल्प विद्याभ्यास से भी प्रकट हुई है तीव्र बुद्धि जिनकी ऐसे जल्दी

ही दूसरों के इंगित आकार को जानने वाले, नीति, युक्ति और सूक्तियों में कुशल हैं। जहाँ उत्पन्न हुए मनुष्य परस्पर मैत्रो भाव का आश्रय करते हुए सर्व प्राणियों के ऊपर साधु के समान करूणा को विशेषतया प्रकट करते हैं। वे दुर्जनों की संगति का त्याग करते हैं और महान् सद्गुरूओं के वचनों का पालन करते हैं। हमेशा अपने देव-गुरू की भक्ति करते हैं। अति दीन व्यक्तियों को दु:ख की परम्परा से मुक्त करते हैं। शाश्वत् आर्हत् धर्म का पालन करते हैं। प्रतिदिन गुरू मुख से सद्धर्म के वाक्यों को सुनते हैं।

उस मालवारूपी भू देवी के मानों शिर का छत्र न हो ऐसी संपूर्ण मनुष्यों के ताप को हरण करने वाली अलकापुरी को भी जीतने वाली उज्जयिनी नाम की महान् राजनगरी अत्यन्त शोभायमान हैं, जिसके चारों तरफ गंगा नदी के समान विविध प्रकार के जन्म से उत्पन्न दु:खों का नाश करने वाली सकल सुख को करने वाली विमुक्ति नगरी की बहन के समान मनोहर क्षिप्रानाम की महा नदी शोभित हैं।

उसके चारों तरफ आनंदकंद को उत्पन्न करने वाले नन्दन वन के समान चित्त को हरण करने वाले बहुत उपवन हैं। मैं मानता हुँ कि अपने से अधिक इनको (वनों को) देखकर ही अत्यन्त लज्जा को धारण करते हुए उस नंदन वन ने मेरू पर आश्रय किया। किसी प्रीतिवाली युवती से युक्त प्रीतिमान् पुरूष के समान, जिस नगरी में मदोन्मत्त भ्रमरजाल से युक्त, कमल समुदाय से विलसित, शीतल अगाध जल से पूर्ण, शत्रुओं के लिए दु:ख पूर्वक सामना करने योग्य खाई (परिखा) से युक्त किला (प्रकार) अत्यंत शोभा को करता हैं। जहाँ पुरी में स्वर्ण कलश से लक्षित शिखर वाले शोभायमान ऊँचे-ऊँचे गगन चुम्बी अनेक जिनमंदिर नवोदित सूर्य से स्पर्शित मेरू पर्वत का अनुकरण करने वाले अत्यन्त शोभित

हो रहे हैं। जिस नगरी में श्रेष्ठिग्रों के महलों के शिखर पर स्थापित की गई कोटोश्वरत्व का अनुपात करती असंख्य ध्वजाएँ स्फुरायमान होती हुई शोभित हैं। उस नगर में महान् दातार रहते हैं जो याचक गण को प्रार्थना से चिन्तामणी एवं कल्पवृक्ष भी न दें, उतना अधिक दान देते हैं। उस नगरी में अपने प्रभाव से जिसने एकाएक समस्त विरोधी पक्ष (शत्रुग्रों) को भयभ्रांत कर दिया हैं, एवं समस्त पृथ्वीतल पर ग्रीष्म के सूर्य के अतिशय तेज के समान प्रसरित, रण (युद्ध क्षेत्र) विक्रम (पराक्रम) वाला 'विक्रमादित्य' नामक सार्थक नाम वाला राजा समस्त पृथ्वी पर राज्य कर रहा हैं।

इसने अपनी धैर्यता एवं बल बुद्धि के योग से अग्निवेताल नाम के व्यंतर देव को अपने बुद्धिबल के द्वारा वश किया। वह देव हमेशा ही उसके आदेश का पालन करता है। वह उसके प्रभाव से अगम्य (जहां नहीं जाया जा सकता) ऐसे देशों में भी सुखपूर्वक जाता है। अजेय शत्रुग्रों के समूह को भी वह बिना प्रयत्न के जीतता हैं। इस मृत्युलोक में भी वह दिव्य सुख को भोगता हैं। वह जन्म से लेकर अखण्ड और निर्मल शील का पालन करता हुग्रा, शत्रु समूह को हराता हुग्रा, दीनों (दुःखी) का उद्धार करता हुग्रा, सेवकों और कुटुम्ब को सुखी करता हुग्रा गुणीजनों का सत्कार करता हुग्रा, इस कलिकाल में भी परस्त्रि को बहन मानता हुग्रा पृथ्वो पर नीतिपूर्वक राज्य करता है।

राजा के अन्तर में रहे हुए मिथ्यात्व रूपी अंधकार को दूर कर महा अद्भुत प्रभावशाली श्रीमान् सिद्धसेनदीवाकर सूरि ने विशिष्ट सम्यक्त्व रूपी सूर्योदय को राजा के अंतःकरण रूपी भवन में प्रवेश करवाया। इन्होंने (श्री सिद्धसेनदीवाकर सूरि ने) अपने

रचित अपूर्व पवित्र स्तोत्र की महिमा से शिवलिङ्ग के मध्य से श्री पार्श्वनाथ भगवान् का मनोहर बिम्ब प्रकट किया। उस बिम्ब की प्रतीदिन पूजा करते हुए विक्रमादित्य राजा ने इस जगत् में चमत्कार प्राप्त किया। उसने स्वर्णमय पुरूष से उत्पन्न संपूर्ण स्वण लोगों में बांट दिया, तथा जगत् के प्राणियों के लिए घर जैसी इस पृथ्वी को ऋण मुक्त करके अपने नाम का संवत्सर सर्वत्र स्थापित किया। उसने स्वयं विविध प्रकार के दु:खों को सहन करते हूए दूसरों के समस्त दु:खों को दूर करते हुए जीमूत वाहनादि कथा को सत्य सिद्ध किया। कलाचार्य के समान संपूर्ण कलाओ में पारङ्गत होते हुए भी स्वल्प कलाज्ञान वाले मनुष्य का भी वह अधिक आदर करता था। इत्यादि अनेक प्रकार के सद्गुणों के समूह से गरिष्ठ श्रीमान् विक्रमादित्य राजा सकल शास्त्रों के जानने वाले विद्यावान् मनुष्यों से शोभित समग्र गुणगणों से विभूषित सभा में, सुधर्म सभा में बैठे हुए इन्द्र के समान अत्यन्त शोभायमान हो रहें थे। उस सभा में कितने ही पण्डित कला के विषय में अतिदुर्गम चर्चा को करते हुए राजा और सभ्यजनों को खुश कर रहे थे। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान तर्क से कर्कस बने तत्व की विचारणा से समग्र सदस्यो को खुश करते हुए शोभते थे। इस प्रकार शस्त्र अस्त्रादि विषयवाली अति विषय विचारणा को सुनते हुए राजा ने कहा—"हे पण्डितो! तुम कहो कि मैं किस विषम कला को नहीं जानता हूं।" ऐसी राजा की उक्ति को सुनकर मुख्य सदस्यों ने कहा—हे स्वामिन्! जिन कलाओं को बृहस्पति अथवा दैत्याचार्य भी नहीं जानते हैं, वे भी इस लोक में शस्त्र से उत्पन्न, शास्त्र से उत्पन्न, तथा बुद्धि कल्पित सकल कलाएँ आपके अंत:करण में सुखपूर्वक निवास करती हैं। इस प्रकार सुनकर कोई एक कुशल, सुविद्वान ने, शिक्षा काल में मस्तक पर

अभिषेक किये गये मनुष्य के समान मस्तक को धुनाता हुआ अवसर उचित वाणी कही। हे राजन्! ये सभी पण्डित सत्य नहीं बोलते हैं। केवल मधुर आलाप-संलाप के द्वारा आप श्री का मन ही खुश करते हैं। क्योंकि—

अवास्तवैर्वास्तवैर्वा, संस्तवैः संस्तवैषिणः ।
ये प्रियोक्तिप्रियान्, रञ्जयन्ति जयन्ति ते ॥ १ ॥

अन्वर्थः—प्रियोक्तिप्रियान् नाथान् अवास्तवैः वास्तवैः वा संस्तवैः संस्तवैषिणः रञ्जयन्ति ते जयन्ति ।

प्रियोक्तिप्रियान्—स्वामी की सुन्दर स्तुति करने की इच्छा वाले ऐसे स्वामी की स्तुति करने वाले व्यक्ति।

नाथान्—मधुर बातों मात्र से तृप्त हाने वाले।

अवास्तवैः वास्तवैः वा स्तोत्रैः—यथार्थ अथवा अयथार्थ स्तुतिओ के द्वारा **रञ्जयन्ति ते जयन्ति** खुश करते है, वे जय को प्राप्त करते हैं। (अर्थात्=चाटु वचनों के द्वारा यथार्थ या अयथार्थ स्तुति से राजा को खुश करने वालों की जीत होती हैं।)

इसीलिए जिस प्रकार जलार्थी (जलको इच्छनें वाला) चातक पक्षी बादल को, उसी प्रकार धनार्थी (धन इच्छने वाले) बिद्वान् मधुर वचनों के द्वारा आपको खुश करते हैं। तत्व का बिल्कुल विचार नहीं करते।

हे देव! यदि सच में आप पूछते हो तो वाचालता से मैं उसका उचित उत्तर देता हूं। क्योंकि—"वाचाल व्यक्ति के सिवाय अन्य कोइ भी राजा को उत्तर देने में समर्थ नहीं हो सकता।" हे प्रभु! आप सकल कला को जानते हो, उसमें बिल्कुल संदेह नहीं हैं। फिर भी स्त्रियों की चारित्र कला में आप

अनभिज्ञता ही धारण करते हैं। जो सर्व तर्क, अंलकार, वगैरह शास्त्रों के अति गूढार्थ को जानता हैं, व्यवहार में असीम चातुर्य को धारण करता है, उसके द्वारा भी स्त्रियों की मनोवृत्ति कभी भी नहीं जानी जाती। जो "विद्वान् अपनी बुद्धि की चतुरता से देवताओं को भी ठगता हैं, वह भी मनोनुकूल विविध प्रकार से क्रीडा करने वाली स्त्री के द्वारा लीला मात्र से ठगा जाता है।" यहां यह तात्पर्य हैं-विषयों की क्रीडा द्वारा युवती ने कितने ही महान् और धीर मनुष्यों को आदर पूर्वक ठगा हैं। वे अपनी विविध विलास चातुरी के कला समूह से इन्द्रजालिक के समान महापुरूषों के मन को भी मोहित करती हैं, धीर पुरूषों को भी दास बनाती है, तो फिर जो स्वरूप से ही मूर्ख हैं, उन मनुष्यों की तो उनके (स्त्रियों के) चरित्र को जानने की क्या शक्ति है? "स्त्रियाँ एक क्षण में ही पी गई मदिरा के समान मनुष्यों को उन्मादित करती है। कहा गया हैं कि:—

संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्संयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ।।

अन्वर्थः—एताः नाराणां सदयं हृदयं प्रविश्य संमोहयन्ति, मदयन्ति, विडम्बयन्ति, निर्भर्त्संयन्ति, रमयन्ति, विषादयन्ति, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ।

ये स्त्रियां मनुष्यों के दयावाले हृदय में प्रवेश कर उनको मोहित करती हैं, उन्मादित बनाती हें, स्खलना पहुँचाती है, तिरस्कार करती है, खुश करती है, और दुःखी करती हें। ऐसा क्या है? जिसे स्त्रियाँ नहीं आचरती है।

जिस प्रकार मरूभूमि में जल से भरी नदी का होना दुर्लभ है, उसी प्रकार स्त्रियों के द्वारा उन्मादित किये गये पुरूषों के अन्तःकरण में तत्त्व की विचारणा प्रगट होना भी दुर्लभ ही लगता है। इसीलिए हे नाथ ! जिस प्रकार आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के चरण किसी के द्वारा नहीं जाने जा सकते, और जल में चलने वाली मछलियों की चरण पंक्ति जानना अशक्य है, उसी प्रकार स्त्री चरित्र बुद्धिमान् पुरुषों के लिए भी जानना अशक्य ही है। इसीलिए मैं कहता हूं—कि आप दूसरी सब कलाओं के अत्यन्त जानकार होने पर भी स्त्री चरित्र में अनभिज्ञता को ही धारण करते हैं। इसीलिए ये सदस्य आपके सामने प्रिय और रूचिकर वाणी बोलते हैं, वहाँ आपका मन खुश होता हैं। इस प्रकार यह सुनकर उसके वचनों पर श्रद्धा रखता हुआ राजा मन में ही विचारने लगा—कि यह व्यक्ति सम्पूर्ण नीति वाक्यों को जानने वालों में अग्रसर है। इसने निश्चय ही सर्व (तथ्य) सारभूत बातें कही है। जिस प्रकार नीतिशास्त्र में कहा गया हैं, उसी प्रकार यह भी कहता है। बुद्धिमान व्यक्ति उपाय के द्वारा समुद्र को भी पार पाने में समर्थ होते हैं, किन्तु कुलटा स्त्री का पार किसी ने नहीं पाया है। इस प्रकार सकल नीति को जानने वाले कहते हैं। जो इस प्रकार सत्य हैं तो मुझे अवश्य इसकी (इस बात की) परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि—लोक में क्या उत्तम स्वर्ण की परीक्षा नहीं की जाती ? परीक्षित होने पर ही वह ग्रहण किया जाता है—कहा गया है कि—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षणच्छेदनताप—ताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषैः परीक्ष्यते,
श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ।

अन्वर्थ—सुगम हैं।

जिस प्रकार सोना निर्घषण (कसौटी के ऊपर घिसने से) छेदन (छेदकर) अग्नि में तपाकर, पीटकर इन चार रीति से परीक्षा (खरे-खोटे की जाँच) की जाती हैं, उसी प्रकार पुरुष भी श्रुत (ज्ञान,) शील, कुल और कार्य (आचरणा) के द्वारा परखा जाता है।

उसी प्रकार मैं भी परीक्षा करुँगा। इस प्रकार निश्चय कर वह राजा विक्रमादित्य भोजन वेला को आई जानकर सभा का विसर्जन कर मनोहर स्नानागार में स्नान करने गया। वहाँ विधि पूर्वक स्नान और विलेपन कर राजा ने मंदिर में आकर जिनेश्वर की पूजा कर भोजनालय में इच्छानुसार भोजन किया। पुनः सभा में आकर विद्वानो के साथ संलाप करते हुए दिन व्यतीत किया। इस प्रकार दिन पूरा होने पर पति चन्द्रमा के साथ संग के लिए उत्सुक रात्रि को जानकर गगन लक्ष्मी भी संध्या राग के बहाने अंगराग के समान शोभने लगी। जिसका एक बार उदय होता हैं, वह कभी अवश्य अस्त (नाश) भी होता ही हैं, इस प्रकार मानो सूचना करता हुआ उस समय सूर्य भी धीरे-धीरे अस्ताचल के शिखर पर आरूढ हुआ। सूर्य को अस्त देखकर उसके वियोग के दुःख को नहीं सहन करने वाले पक्षी भी चारों ओर चिल्लाने लगे। जगत् को आह्लादित (आनंदित) करने वाले सूर्य के अस्त होने पर चोर के समान लोक का अपकार करने वाला अन्धकार, सर्व दिशाओं में अत्यंत व्याप्त हुआ। उसी समय अपने प्रिय सूर्य को अस्त होते देखकर उसके विरह से दुःख कमलिनियाँ सुख से रहित बनी हो, इस प्रकार म्लान बनी।

अब संध्या की पूर्ण क्रिया को विधिपूर्वक कर विक्रमादित्य

राजा ने अन्तःपुर में आकर शय्या को अलंकृत किया। वहाँ पर वारांगनाओं (वेश्याओं) के द्वारा सेवा किये जाने पर भी वह मन रूपी घर में पण्डित के कहे गये स्त्री चरित्र को जानने का उपाय सोचता हुआ लेश मात्र भी निद्रा को नहीं प्राप्त करता विचार करने लगा—कि सभा में उस विद्वान् ने कहा था कि स्त्री चरित्र जानना महान् पुरुषों के लिए भी दुष्कर है, तो वह किस प्रकार है, अथवा मैं उसे कैसे जानूंगा ? अथवा मेरे जैसे पुरुषों के लिए यह देखना (स्त्री चरित्र की परीक्षा करना) योग्य नहीं है। क्योंकि दुर्जन ही दूसरों के छिद्रों को देखने की इच्छा करते हैं, सज्जन तो उससे विमुख ही रहते हैं। कहा गया है कि—

गुण दोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविश्वेश्वर ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं, परं कण्ठे नियच्छति ॥

अन्वयः—सुगम है।

व्याख्याः—जिस प्रकार ईश्वर महेश्वर ने समुद्र के मन्थन से उत्पन्न हुए चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किया और सकल लोक में निन्दापात्र गरल, विष को कण्ठ मध्य में ही स्थापित किया। पण्डित, सज्जन पुरूष दूसरों के गुण और दोष को ग्रहण कर और देखकर गुणों की मस्तक द्वारा प्रशंसा करते हैं और दोषों को कण्ठ में ही स्थापित करते हैं, उनको कभी भी प्रकट नहीं करते।

फिर भी उस अति विद्वान् की तथोक्ति (कही गई बात) की परीक्षा के लिए मुझे अवश्य इसकी परीक्षा करनी चहिए। जो कि ऐसे विशिष्ट पुरुषों के वचनों में असत्यता कभी नहीं हो सकती, फिर भी मैं इस बात की परीक्षा करूँगा—"क्योंकि सुने हुए का साक्षात्कार करने पर महान् पुरूषों को भी उसकी अधिक प्रमाणता सिद्ध होती है। इस प्रकार निश्चय कर देव के समान शक्तिशाली

नीले वस्त्र पहनकर अकेला ही तीक्ष्ण तलवार को हाथ में लेकर वह राजा शय्या को छोड़कर उसकी परीक्षा के लिए गुप्त रीति से नगर में सर्वत्र यहाँ वहाँ घूमते हुए किसी स्थान पर एक साथ क्रीडा करती, रूप लावण्यादि गुणों की खान, अति चतुर दो कन्याओं को राजा ने देखा। उस समय उनको परस्पर की बातों को देखी। उस समय उनकी परस्पर की बातों को सुनने की इच्छा से राजा वहाँ स्थिरता पूर्वक खड़ा रहा। उतने में स्वभाव से सरल एक कन्या बोली, हे सखी! जब मैं शादी कर ससुराल जाऊँगी, तब उत्साह पूर्वक अपने प्रियतम की निरन्तर असीम प्रीति से अति सेवा करूंगी। क्योंकि "स्त्रियों के लिए पति सेवा महाफल-दायी, सुख को लाने वाली, स्वर्ग और मोक्ष को देने वाली हैं, इस प्रकार नीति शास्त्र में कहा गया हैं।" गृह कृत्यादि के लिए जो-जो आदेश पति देंगे, उन सबको शिरोधार्य सुख पूर्वक करूंगी। अति उच्चवृत्ति को मैं हृदय में हमेशा स्थापित करूंगी। क्योंकि पतिव्रता स्त्री के लिए पति ही देव कहा गया है। इसीलिए स्वामी की आज्ञा पालन ही स्त्रियों के लिए साधने योग्य मुख्य कर्तव्य है। तभी तो धर्म नीति शास्त्रों में कहा गया हैं।" कि—

न दानैः शुद्ध्यते नारी, नोपवास शतैरपि।
अव्रतापि भवेच्छुद्धा, भर्तृ हृद्गतमानसा॥
अन्धं वा कुब्जकं वाथ, कुण्ठं वा व्याधि पीडितम्।
जीविताबाथ भर्त्तारं, पूजयेत् सा महासती॥
त्यजेत् पुत्रञ्च, मित्रञ्च, पितरावपि शोभनौ।
जीवितावधि भर्त्तारं, न त्यजेत् सा महासती॥
अन्वयः—सुगम है।

व्याख्याः—नारी न तो दान से न सेंकडों उपवासों से भी

शुद्ध होती हैं। परन्तु पति के हृदय में जिसका मन हैं वह व्रत रहित होने पर भी शुद्ध होती हैं।

अंध, अथवा कुब्ज अथवा व्याधि से पीडित भरतार (पति) की जीवन पर्यन्त जो पूजा करती हैं, वही महासती हैं।

चाहे पुत्र को, मित्र को, सुन्दर माता-पिता को छोड दे पर जो आजीवन पति को नहीं छोडती है, वही महासती हैं।

इस प्रकार नीति वचन रूपी मंत्राक्षर के श्रवण से नाश हुई हैं, धृष्टता जिसकी ऐसी मैं अपने प्राण नाथ की जीवन पर्यन्त सेवा करूंगी। इस प्रकार सुनकर शाठ्य प्रकृति वाली दूसरी कन्या बोली—हे सखि ! तेरे इस कथन से निश्चय ही मैं तुझे भोली समझती हूँ। क्योंकि तू इस प्रकार बोलती हैं जो निश्चय ही तेरी ये उक्तियाँ, तेरी मूर्खता और आलस्यता को प्रकट करती हैं। जो स्त्रियाँ विवेकादि से रहित आलसी होती हैं, वे ही तुम्हारे समान सतीत्व का सेवन करती हैं। परन्तु मेरे जैसी कुशल स्त्रियाँ तो मनोनुकूल कार्य ही साधती हैं। जब मैं शादी कर पति के घर जाऊँगी, तब सकल युवा पुरुषों के मन को मोहित करने वाले विविध प्रकार के हाव-भावादि विविध चेष्टा से पति को मेरे में आसक्त करती हुई अपनी चतुराई से अतिरमणीय अत्यन्त तरूण दूसरे पुरूषों के साथ भी इच्छापूर्वक रमण करूंगी। क्योंकि—"विविध प्रकार के रसों के स्वाद को इच्छने वाली भ्रमरी एक ही वृक्ष का सेवन नहीं करती, अपितु अनेक वृक्षों का सेवन करती हुई अपनी इच्छा की पूर्ति करती हैं। उसी प्रकार मैं भी विविध विषयों के रसास्वाद करने की इच्छा से बहुत गुणवान् युवा पुरुषों का उपभोग करती हुई अपने यौवन को सफल करुंगी। क्योंकि 'स्त्रियाँ एक के साथ ही प्रीति से चतुरता को प्राप्त नहीं करती है,

किन्तु अनेक कुशल अनुरागि तरुण पुरुषों के साथ मैत्री करने से ही चरित्र की विचित्रता सिद्ध करती है।" स्त्रियों की उत्पन्न हुई अतीव कामाग्नि एक पुरूष से कैसे शांत हो सकती हैं, शांत हो ही नहीं सकती यही रहस्य है। वन में बढने वाला दावानल एक घड़े के पानी से शांत नहीं होता, उसी प्रकार किसी काम-शास्त्र पूर्ण बलवान् पुरूष की एक स्त्री के द्वारा शान्ति नहीं होती। तो फिर हे सखि ! तूं ही कह, जहाँ पुरूष की अपेक्षा आठ गुणाधिक कामाग्नि वाली स्त्री सर्वांग में काम उत्पन्न होने पर एक पुरुष से अपनी इच्छा की पूर्ति कैसे कर सकती हैं। कहा गया हैं कि—

नाग्निस्तुप्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां, न पुंसां वाम-लोचनाः ॥

अन्वय—सुगम हैं।

व्याख्याः—जिस प्रकार काष्ठ के समूह से अग्नि शांत नहीं होती, जैसे नदियों के संगम से समुद्र तृप्त नहीं होता, सर्व प्राणियों के नाश से यमराज तुष्ट नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियाँ बहुत पुरुषों के भोग से भी तुष्ट नहीं होती।

जो दक्ष स्त्री युवानी युक्त होते हुए भी सतीत्व को धारण करती हैं, वह निश्चय ही गुणवान् युवा पुरूषों के नहीं मिलने पर ही/अन्यथा वह कभी भी सतीत्व को धारण नहीं कर सकती। जैसे नदियाँ अपने आश्रय का लाभ मिलने पर शीघ्र ही समुद्र में मिलती हैं उसी प्रकार नारियाँ भी प्रार्थना करने वाले के होने पर उसके साथ मिल जाती हैं। इसलिए हे सखि ! कामी युवकों के मन को वश करने में तारुण्य रूपी पुण्यमय सिद्ध मंत्र को प्राप्त की हुई मैं तीन चार चतुर तरुण पुरुषों को अत्यंत सेवितकर

अपने तारुण्य को सार्थक करूंगी, इस प्रकार उनके आलाप को सुनकर राजा विचार करने लगा—

अहो ! यह अति आश्चर्य हैं, इन दोनों का परस्पर आलाप विरूद्धाभास लग रहा हैं । अहो ! यह महाअद्भुत् हैं, कि इनमें से एक तो सरल दीख रही हैं, और दूसरी कपटी (मायावी) लग रही है । इस दोनों की बाल्यकाल में भी स्वभाव की परिणति कैसो भिन्न हैं । अथवा द्राक्ष में स्वाभाविक मधुरता के समान इन दोनों कुमारियों में बाल्यकाल से ही प्रकृति में विचित्रता हैं । जो कि बड़ी हैं वह सतीत्व के कारण श्रेष्ठ हैं, फिर भी मेरे इच्छित कार्य में उपयोगी इस द्वितीया से ही मुझे शादी करनी हैं । क्योंकि किसी भी पदार्थ का निर्णय करने की इच्छा वाले लोगों में यही सरल उपाय हैं । क्योंकि लोक में स्वर्ण की परीक्षा कसौटी के पत्थर पर ही की जाती है, पर मोती (मोती पर घिसकर) के द्वारा नहीं की जा सकती । इसी कारण इस कन्या से शादी कर धीरे-धीरे अपने इच्छित को सिद्ध करूंगा । क्योंकि शीघ्रता से किया गया कार्य भविष्य में आपत्ति का ही कारण बनता है और मेरे द्वारा युक्ति से चारों तरफ से अटकाई की जानी चाहिए, जिससे स्वेच्छा पूर्वक कुछ भी करने में असमर्थ बनेगी । तभी अवश्य इसकी दुष्टता, चतुराई ओर अभिमान के साथ हो प्रकट हो जाएगी । इस प्रकार मन में निश्चय कर घर भित्ति पर, दीवार पर चबाये हुए पान को थूँक कर अपने आपको कृत-कृत्य मानता हुआ राजा आनंद पूर्वक अपने घर गया । स्वभाव से ही अल्प निद्रालु राजा गुणों की स्थानभूत शय्या का क्षणमात्र सेवनकर कुछ सोकर रात्रि के अंत में पुन: जागा । उस समय अपने शत्रु सूर्य का आगमन देखकर एवं अपने पुत्र अंधकार को जाता देखकर रात्रि भी जाने

के लिए उत्सुक बनी। उस समय अपनी पत्नी रात्रि के वियोग से होने वाले दुःख से दुःखी चन्द्रमा भी जल्दी से कृश हो गया। अन्यथा वह कैसे उसी समय लुप्त होता, और अपने पति की दुर्दशा को देखने या दूर करने में असमर्थ ग्रह समुदाय भी मानों लज्जा को को प्राप्त कर शीघ्र ही तेज रहित होकर अदृश्य हो गये। उस समय अति लाल अरूणोदय को देखकर पूर्व परिचय से खुश, पूर्व दिशा सुप्रकाश के बहाने, हंसती हुई सध्या के बहानें, प्रकटरूप में राग को धारण करती हुई अतिशय शोभने लगी। अपने किरण रूपी पटल के द्वारा नाश कर दिया हैं संपूर्ण अंधकार का समूह जिसने, ऐसा सकल तेजस्वी नक्षत्रों के प्रभा अभिमान को कम करता हुआ सूर्य उस समय उदयाचल के शिखर पर माणिक्य के समान शोभने लगा। जसे प्रीतिमान् पति प्रेम से से अपनी पत्नी को कुंकुम आदि लेप से शोभित करता हैं। उसी प्रकार सूर्य ने भी कोमल किरणों के समूह से आकाश और पृथ्वी को भूषित किया। उस समय प्रिय सूर्य के हाथ (किरण) स्पर्श से खुश हुई कमलिनी विकसित हुई। सभी पक्षियों ने भी मधुर वाणी से सूर्य का स्वागत करते हुए, उदय को प्राप्त सूर्य को आदर पूर्वक कुशलादि समाचार पूछा। इस तरफ सुप्रभात होने पर मानो सागर में से निकलते हुए महान् तेज से जाज्वल्यमान् सूर्य के समान महल में से बाहर निकलते विक्रम राजा की सब लोग स्तुति करने लने।

अब प्राभातिक सर्व कार्य को विधिपूर्वक कर आकाश को जैसे सूर्य अलंकृत करता हैं वैसे महामहिमाशाली राजा ने सभा को अलंकृत किया। उसके बाद किसी सेवक को बुलाकर उसे इस प्रकार राजा ने आदेश दिया—अरे! तुम अभी जाओ, जिसकी भित्ति पर चबाया हुआ ताम्बूल थूका हुआ देखो, उस घर के

अधिपति को ले आओ। राजा के आदेश से वह नौकर उसी समय वहाँ जाकर राजा के आदेश को उसे सुनाकर साथ ही उस श्रेष्ठी को राजा के पास सभा में ले आया। उस समय उसे आते देखकर राजा ने अभ्युत्थान आदि के द्वारा उसका खूब सम्मान किया। योग्य आसन के ऊपर उसे बिठाकर कुशल क्षेम सहित मधुर वचन से राजा इस प्रकार बोलने लगा—हे श्रेष्ठी, जो तुम्हारी पुत्री स्त्री जनों के योग्य चतुराई में कुशल सुनी जाती है, उसका पाणिग्रहण मेरे साथ करो। मेरे बहुत पत्नियाँ हैं, फिर भी मैं आपकी पुत्री से शादी करूंगा। 'क्योंकि मोती की माला होने पर भी क्या गुणवान पुरुष पुष्पमाला को धारण नहीं करते ?' इस प्रकार राजा का कथन सुनकर श्रेष्ठी बोला—हे स्वामिन्! मैं आपको सहर्ष पुत्री देता हूं। क्योंकि आप हमारे स्वामी न्यायवान् और विनयवान् हैं। यह सम्बन्ध तो है ही। पुत्री देने से दूसरा भी अपना घनिष्ठ सम्बन्ध उत्पन्न होगा। इसीलिए मैं इसे महानंददायी और लाभकारी मानता हूँ। हे प्रभो! आप जिस कुमारी की इच्छा करते हैं, उसे ही मैं सब स्त्रियों में श्रेष्ठ मानता हूँ। शंकर द्वारा इष्ट गौरी (पार्वती) के समान यह कन्या भी समस्त रानियों में आपके मान्य बनेगी। क्योंकि आप स्वयं ही इसकी इच्छा करते हैं। इस प्रकार बातें कर अपने घर आकर उस कन्या को महामूल्यवान् आभूषण आदि से संर्वांग विभूषित कर विक्रमराजा के पास लाकर समर्पित किया, जैसे पहले क्षीर समुद्र ने अपनी पुत्री लक्ष्मी विष्णु भगवान् को प्रदान की थी। उस समय नैमित्तिक के बताये हुए शुभ लग्न में विक्रम राजा ने उस अंलकार सहित कन्या का वरण किया और सुन्दर ईटों से बने एक स्तम्भ वाले महल में उसे रखी। एक स्तम्भ वाले अमृत के लेप से अति कोमल उस भवन में कीट वगैरह भी ऊपर चढने में अथवा प्रवेश करने में असमर्थ थे। तो

पुरुष कैसे प्रवेश कर सकता है ? अति अनुराग को धारण करता हुआ राजा अग्नि वेताल के बल से उस भवन में नटराज के समान स्वयं जाने लगा। समस्त सज्जनों में शिरोमणि राजा उस नव-परिणीत स्त्री को कल्पवृक्ष के समान इच्छित दिव्य विविध प्रकार के भोजन वस्त्रादि, उसके योग्य महामूल्यवान् कौशेय वस्त्र दिव्य आभूषण आदि देने लगा। अधिक तो क्या कहें, जिस-जिस सामग्री की वह इच्छा करती थी, वह सब वस्तुएँ राजा देने लगा।

अब अति सुंदर उस महल में नवपरिणीता वह मन में ही विचार करने लगी—अहो ! अहो ! अकारण ही यह राजा शत्रु के समान जैसे सारिका पक्षी को पिंजरे में रखा जाता हैं वैसे मुझे इस महल में कैदखाने के समान रखी हैं। अथवा तो दूसरे व्यक्तियों के प्रवेश करने में अशक्य इस भवन में मुझे रोककर बलपूर्वक यह राजा मेरे से सतीत्व का पालन करवा रहा हैं। क्योंकि इसके अन्त:पुर में दूसरी भी स्त्रियाँ हैं, उनको तो कभी ऐसे भवन में नहीं रखता। ठीक ! मैंने इसका कारण जाना। जिस रात्रि में सखी के साथ लम्बे काल तक मैंने सब हृदयगत बातें की थी, वे सब रात्रिचर्या के लिए घूमते हुए इसने सुनी है। इसीलिए उसका प्रतिकार करने की इच्छा वाले, इस राजा ने विचारवानों में अग्रे-सर होते हुए, दाक्षिण्य शिरोमणी मेरे सहारे स्त्रीजनों के चारित्र को जानने की इच्छा से ही मेरा पाणिग्रहण किया है। इसी कारण मैं अनुमान लगाती हूँ—"कि इस राजा ने तीव्र भाववाली, अति कामेच्छा वाली, चातुर्यता युक्त मेरा वरण कर म्यान में तलवार के समान ऐसे बंद घर में मुझे रक्षा के लिए ही रखा हैं।" खैर यह बात दूर रहो, अगर यह जाने तो भले जाने, किन्तु वास्तवि-कता को नहीं जानते हुए इस राजा ने यदि इस इच्छा से ही यह कार्य किया हैं, तो भी यह मुझे रक्षण करने में (बंद करने में)

कभी समर्थ नहीं होगा। अभी तक तो कुछ नहीं बीता। अब इन असार बातों से क्या ? वर्तमान में मेरे लिए जो हितकारी हैं वही मुझे विचारना चाहिये। अथवा मैं तो अवश्य ही विचारित कार्य को आगे करूंगी। इस प्रकार मन में निश्चय कर अपने कार्य को साधने की इच्छा से अवसर की राह देखती हुई सावधानी पूर्वक कपटता रूपी पानी से भरे वापिका वाली वह नवपरिणीता अपनी असीम चातुर्यकला से राजा के ऊपर बाहर से प्रेम को दिखाती, अंदर कपट को धारण करती हुई चतुर राजा को मनोरंजन के लिए मनोहर वचनों से नचाती हुई, सरस वचन रूपी वर्षा को बरसाने लगी। इस प्रकार अपने स्वभाव को प्रकट करती हुई इस रानी को कुशल होते हुए भी राजा उसके कपट प्रेम से मुग्ध होकर सरल प्रकृति वाली ही जानता हैं। उसकी पूर्व परिचित कुशलता को सर्वथा भूल गया। स्त्रियों के लिए पति की अनुकूलता धारण करना ही महान् रस हैं इस निश्चय को अपने हृदय में धारण करती हुई वह राजा के प्रेरणा किये बिना भी राजा के चित्त के अनुकूल आचरण करने पूर्वक राजा के मन को खुश करने लगी। उसके अतिशय अनुकूलवृत्ति से खुश राजा भी उसके अनुकूल ही उसको भोगने लगा। क्योंकि—स्त्रियाँ सकल लोक को वश करने के लिए मंत्र बिना के आचरण रूपी कार्मण को धारण करती हैं।

अब एक बार उस नवपरिणीत रानी ने राजा से कहा—हे स्वामिन् ! मैं यहाँ भवन में परिवार रहित शरीर मात्र के सहाय वाली अकेली कैसे दिनों को व्यतीत करूं। आप भी तीन-चार दिनों के अन्तराल से मेरे पास आते हैं। उसी दिन की मैं गिनती करती हूँ। उस रात्रि को ही मैं क्षणमात्र समझती हूँ। अंग का संग जिस रात्रि में प्राप्त नहीं करती हूँ। वह रात्रि एक वर्ष के समान लगती हैं। इसीलिए प्राण समान आपसे वियुक्त मैं सुखपूर्वक

दिनों को व्यतीत करूं ऐसा आप मुझ पर कृपा कर कीजिए। लेखन सामग्री, लेखनी (पेन) स्याही आदि मुझे दीजिये, जिससे आपके विरह से दुःखी भी मैं इस कार्य को करती हुई समय पसार करूं। किसी कवि ने कहा हैं:—

गणयति दिनमपि कल्पं, विरहपीडिता निरूद्यमा नारी।
मनुते सैव हि वर्षं, भर्तुरङ्कगता किल घस्रम्॥

अन्वयः—विरहपीडिता निरूद्यमां नारी दिनमपि कल्पं गणयति। सैव हि भर्तुरङ्कगता किल वर्षं घस्तं मनुते।

व्याख्याः—विरह से दुःखी लेखन पठन आदि सदुद्योग से रहित नारी एक दिन को भी युग के समान गिनती है वही नारी पति के अंक में रही हुई निश्चय ही एक वर्ष को भी एक दिन के समान मानती है।

इस प्रकार उस नवपरिणीता स्त्री के द्वारा प्रार्थना करने पर राजा ने उसे लेखन आदि समस्त सामग्री प्रदान की। वह भी अंतरंग राग के बिना ही बाह्य राग से राजा को आह्लादित करती हुई अत्यन्त प्रसन्न बनी। इस प्रकार राजा ने उस विदुषी स्त्री को सर्व इच्छित प्रदान करते हुए संतोषित किया। वह भी राजा के इंगित आकार जानने में कुशल बाह्य उपचार से उसे खुश करने लगी।

श्री सौधर्म बृहत्तपानाम के जिसकी स्वच्छ महिमा लोक में प्रसिद्ध हैं, ऐसे जगत को जीतने वाले गच्छाधिपति श्री राजेन्द्र के दो चरण कमलों में वंदन हो। श्री यतीन्द्र मुनि द्वारा आनन्द पूर्वक रचित इस पद्य प्रबंध में चम्पकमाला के चरित्र का यह आद्य प्रस्ताव पूर्ण हुआ।

द्वितीय प्रस्तावः

अब एक बार उस नगर में रूप से कामदेव के समान, श्री (लक्ष्मी) कुबेर को भी जीतने वाला ऐसा कोई एक गगनधूलि नामक सार्थवाह वहाँ आया। और उसने महामूल्यवान् वस्तुओं को इकट्ठा कर राजा को उपहार दिया। इस उपहार से राजा लक्ष्मी के भण्डार के स्वामी (कुबेर) के समान उस पर खुश हुआ। और व्यापार के लिए लाई हुई उसकी वस्तुओं का कर माफ कर दिया। और उसे रहने के लिए राजा ने एक उत्तम महल दिया। उस महल में सार्थवाह सुखपूर्वक रहने लगा। एक बार अपने घर के नजदीक के मार्ग से राजसभा में पालखी में बैठकर जाते हुए उसे गवाक्ष में बैठी हुई उस नवपरिणीता रानी ने देखा। उसे देखकर वह अपने मन में विचारने लगी—अहो! यह राज सम्मान से युक्त पुरुष मेरे नेत्रों रूपी चकोर को पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान तृप्त करता हैं, मेरा मन भी कैरव के समान अत्यंत उल्लसित हो रहा हैं। इसका रंग भी मानवाली स्त्रियों के मान को उतारने में दक्ष अतीव इच्छनीय और प्रशंसनीय दिख रहा है। इसका सौभाग्य भी लोकोत्तर दिख रहा हैं। मैं चित्त को हरण करने वाला इस पुरुष का अद्वितीय रूप देख रही हूँ। तो फिर यह पुरुष सर्व केश-धारी स्त्रियों के मन में अद्भुत चमत्कार को क्यों न उत्पन्न करेगा। मैं अपने दोनों नेत्रों को सफल मानती हूँ क्योंकि इन आँखों ने दूसरों के लिए अति दुर्लभ कामदेव के समान, सौन्दर्यता के सागर समान इसको देखा हैं। अधिक तो क्या? जिस स्त्री ने सौभाग्य शिरोमणि इस महापुरूष को नहीं देखा है, उसका जन्म व्यर्थ ही गया मानना चाहिये। देखने पर भी जिस स्त्री ने इसका

गाढ़ आलिंगन नहीं किया। उसका जन्म ही विफल गया। इसीलिए हे विधि (भाग्य)! मुझे जल्दी पाँखो वाली बना, जिससे शीघ्र उड़कर इस पुरुष के कमल समान अंक (गोद) में बैठुं। हे चित्त! तूं प्रसन्न बन, धैर्य को धारण कर, भुजा युगल को प्रसारित करने की विद्या दे, जिससे दोनों हाथों को फैलाकर जल्दी अपने किये गये मनोरथ वाले इसका आलिंगन कर सुखी बनूं। जिस प्रकार इसके अंगस्पर्श से मेरा अंग भी कब सफल बनेगा? इस प्रकार विचार करती हुई उसी पुरुष को एकाग्र चित्त से देखती हुई वह रानी उसके अदृश्य होने पर भी जिस मार्ग से वह गया, उसी मार्ग को विलक्षण भाव से देखती रही। फिर एक क्षण में ही सावधान हृदय वाली वह विचारने लगी—कि मैं इस पुरुष के योग बिना एक क्षण भी जीने में समर्थ नहीं हूँ। इसीलिए मेरे जीवन को धारण करने वाले इस पुरुष का गाढ आलिंगन जिस प्रकार प्राप्त हो, वैसा मुझे प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि-"अपने प्राणों को धारण करने में जो आलसी बनता है अथवा विलम्ब करता है वह अंत में महाकष्ट को प्राप्त करता है।" इसीलिए मुझे इस कार्य को साधने में विलम्ब करना अनर्थकारी ही होगा। इस प्रकार निश्चय कर उस तरूणी ने उस धनवान सार्थवाह को अपना अभिप्राय बताने के लिए निर्लज्ज एवं निर्भय बनकर उसी समय एक पत्र में दो श्लोक इस प्रकार लिखें—

"नाथ! प्रदोष संरूद्ध सञ्चारा पद्मरागा,
भृङ्गी समीहते चिन्ता-व्याप्ता मित्र! तवागमम्।

अन्वयः—नाथ! प्रदोषसंरूद्ध सञ्चारा पद्मसद्मगा चिन्ता व्याप्ता भृंगी मित्र। तवागमम् समीहते।

व्याख्या:—हे नाथ! सांध्यकाल में जिसका गमन बंद हो गया है और पद्म रूपी घर में जो रही हुई हैं, इसी कारण चिंता-

कुल बनी वह भमरी हे, मित्र (सूर्य) । आपका आगमन इच्छती हैं । द्वितीय पक्ष में इसका अर्थ–कोई स्त्री दूसरे पुरुष से कहती है- हे नाथ ! रात्री में मेरा बाहर जाना अवरूद्ध है, मैं कमल भवन में रही हुई, चिंताकुल भमरी अपने हित के लिए सूर्य जैसे तुम्हारी इच्छा करती हूँ । तथा मैं घर में अटकी हुई अति कामाग्नि से पीडित संपूर्ण अंग वाली आपकी ही इच्छा रखती हूं ।

'तदुपेक्षां भवान् भास्वान् । कर्त्ता चेत्तदभाग्यतः ।
हताशाऽन्तसंयोगं तदा सा लप्स्यते ध्रुवम् ।।"

अन्वयः—भास्वान् चेत्तदभाग्यतः भवान् तदुपेक्षां कर्त्ता तदा ध्रुवम् हताशा सा अन्तसंयोग लप्स्यते ।

व्याख्याः—हे सूर्य ! यदि उसके अभाग्य से अर्थात् कर्म दोष से आप उसकी उपेक्षा करेंगे अर्थात् नहीं आएंगे, तो वह अवश्य ही हताशा बनी भमरी, कृतान्त का संपर्क प्राप्त करेगी, अर्थात् मर जाएगी, इस बात में आप लेश भी संशय मत करे । दूसरे पक्ष में—मेरे अभाग्य के योग से मेरी उपेक्षा करके अगर आप नहीं आएंगे तो निराश बनी मैं अवश्य मर जाऊंगी । इस प्रकार जानकर मेरे ऊपर कृपा कर आप अवश्य यहाँ पधारे ।

बाद में इस पत्र को पर्ण के लिफाफे में बंद कर गवाक्ष में रही हुई उस श्रेष्ठी के आगमन की इच्छा वाली उस रानी ने पुनः वहाँ आए सार्थवाह की गोद में जिसमें पत्र रखा गया हैं, वह पर्ण वीटिका फेंकी । उस समय गगन से गिरी हुई उसे देखकर क्या यह किसी देवता ने गिराई है ? इस प्रकार की बुद्धि से सार्थवाहने अपनी दृष्टि को ऊपर उठाई । उस समय नीचे की ओर देखने वाली गवाक्ष में बैठी हुई उसे देखकर उसके रूप, लावण्य, तारुण्य को देखने से उन्मादित बना वह (सार्थवाह) महाबकरे के समान

निर्लज्ज बनकर अनिमेष दृष्टि से उसे देखने लगा। क्योंकि ऐसे कामी पुरूषों को लोक लज्जा या राजभय कैसे उत्पन्न हो सकता है? उसी को देखता हुआ वह अपने मन में विचारने लगा। निश्चय ही यह रानी स्निग्ध दृष्टि से मुझे देखती हुई मानसिक राग को बता रही है। क्योंकि आंतरिक राग के बिना कोई भी अबला किसी को भी ऐसे नहीं देखती। मैं मानता हूं कि साक्षात् मूर्तिमान प्रीति को ही इसने पर्ण वीटिका में मुझे अर्पित की है। इसी कारण इसके अन्दर क्या है? वह मुझे इस वीटिका को खोलकर अच्छी प्रकार देखना चाहिये। क्योंकि-"रागीजन ने दी हुई साधारण वस्तु भी बहुमान के योग्य होती है।" इस प्रकार सोचकर उसे खोलकर उसके अन्दर साक्षात् कामदेव के आदेश के समान सुन्दर पत्र पर कर कमल से अंकित किये गये दो श्लोकों को सार्थवाह ने देखे। उसके (रानी के) मानसिक राग रूपी खजाने के बीज रूप दो श्लोक को पढ़कर उसके मनोगत आशय को जानते हुए सार्थवाह ने उसके साथ संग करने की उत्सुकता को धारण की और मन में इस प्रकार विचारने लगा-अहों! रति के भी रूप मद को हरण करने वाला अति आश्चर्य कारी इसका रूप है। इसका लावण्य भी मैं लोकोत्तर देखता हूं। और इसका अद्भुत दाक्षिण्य भी असाधरण दिख रहा हैं। मेरे उपर यह किसी अकथनीय अनुराग को धारण करती हैं। तथा अन्योक्ति लेखन और कहने की कुशलता भी इसकी अलौकिक हैं। इस प्रकार उस रानी का आलिंगन करने के लिए और यथेष्ट देखने के लिए उत्सुक उसके ऊपर अनुराग वाला बना सार्थवाह विचारने लगा-निश्चय ही यह मेरे ऊपर अनुराग वाली दिखती है। इसी· लिए इसकी अपेक्षा करनी मेरे लिए योग्य नहीं हैं। उपेक्षा करने पर काम बाण के जाल से अति पीडित अंगवाली हताश होकर

यह रानी अगर मर जाएगी, तो उसकी हत्या मुझे ही लगेगी। इसीलिए किसी भी उपाय से मुझे उसके पास जाना चाहिए। वहां जाकर जो उचित लगेगा वह करुंगा। इस प्रकार विचार करता हुआ वह अपने घर गया। वहाँ किसी एक बुद्धिमान् प्रेम प्रात्र मित्र को ये सब बाते कही—हे मित्र! यह कार्य अतीव दुःसाध्य है, क्योंकि एक स्तम्भ वाले महल में रही हुई उसका संयोग सुखकर नहीं हैं, किन्तु अतीव दुष्कर हैं। जो मैं वहाँ नहीं जाऊँगा, तो (वह अवश्य) पञ्चबाण (काम) से परवश होती हुई ही मर जाएगी। इसीलिए अब मैं क्या करूं। एक तरफ विषम नदी और दूसरी तरफ व्याघ्र वाला न्याय आ खड़ा हुआ हैं। अथवा आपकी सहायता से दुष्कर कार्य भी सुलभता से शीघ्र ही सिद्ध होगा ऐसा मानता हूँ। क्योंकि अवरोध की रक्षा करने वाले नौकर के प्रभाव से कौलिक (हल्की जाति वाला) भी राजकन्या का उपभोग करता हैं। धूलि कणिका भी वायु के संयोग से पर्वत के शिखर पर चढ़ जाती हैं। दूसरों की सहायता से असाध्य कार्य भी सुखकर हो जाता हैं, जिस प्रकार मणि एक पद चलने में भी असमर्थ होते हुए भी दूसरों की सहायता से अगम्य स्थान पर भी चली जाती हैं। उसी प्रकार यह मेरा असाध्य कार्य भी बुद्धिमानों में अग्रेसर आपकी सहायता से जल्दी ही सिद्ध होगा। इस प्रकार सार्थवाह के वचनों पर विचार कर उसके दुःख से दुःखी होते हुए मित्र ने उसे इस प्रकार कहा—हे मित्र! जिस प्रकार कोई अनजान व्यक्ति बोलता हैं, उस प्रकार आपने दुःखयुक्त यह बात कही। यह कार्य तो वृद्धों की सेवा करने वाले मेरे लिए असाध्य और कष्टसाध्य कुछ भी नहीं हैं। मैंने पहले एक बार वृद्धों के मुख से सुना हैं, कि चन्दनगोधा महाबलवान् होती हैं, यह चढ़ने में अगम्य घर में भी बिना प्रयास जल्दी ही चढ़ जाती हैं। इसलिए जल्दी कहीं से उसे

लाया जाय। जिससे वह जल से रहित मछली के समान स्त्री से रहित अति दुःखी आपको उसके पास जल्दी ही लेकर जाएगी। इसीलिए जैसे वायु से प्रेरित अग्नि वन को शीघ्र ही जलाती हैं, उसी प्रकार हे मित्र! तुम्हारे प्रेम से प्रेरित मैं यह कार्य बिना प्रयास ही करूंगा। जिससे अभी आपकी इस चिंता को मैं दूर करता हूँ। क्योंकि 'बलवान और बुद्धिमान पुरुष को भी उत्पन्न हुई चिन्ता चित्ता के समान अतिशय जलाती हैं।" कहा है कि—

चिता चिन्ता समायोगे, चिन्तैवास्ति गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं, सजीवं स्फुटमेव सा॥

अन्वयः—सुगम हैं।

व्याख्याः—चिता और चिन्ता दोनों का योग होने पर चिन्ता ही क्लेश की अधिकता वाली होने से बडी हैं। क्योंकि चिता निर्जिव (मुर्दे) को जलाती हैं, चिन्ता तो जीवित प्राणी को बलपूर्वक जलाती हैं।

इस प्रकार सार्थवाह को आश्वासन देकर स्वयं किसी गाँव में जाकर पूर्व परिचित चोर के पास से सुशिक्षित चन्दनगोधा को ग्रहण कर किसी कलश में रखकर सार्थवाह के साथ एक-एक हाथ पर दी गई ग्रन्थी वाली बड़ी मजबूत डोरी को ग्रहण कर उसी रात्री में एक स्तम्भ वाले भवन के पास आया। वहाँ आकर घड़े में से चन्दनगोधा को निकाल कर उसकी केड़ में उस डोरी को बांधकर वांस के दन्डे पर चढ़ाकर उसे ऊपर फेंकी। वह भी उसी क्षण चढ़ती हुई उसी महल के वातायन (बारी) में आलिंगन कर (चिपक कर) रही। उसके बाद उस मित्र से प्रेरित वह सार्थवाह दोनों हाथों से डोरी को ग्रहणकर, पैर के अगूंठे और अंगुली को डोरी के मध्यभाग में की गई ग्रन्थि में स्थापित कर, वांस के अग्र-

भाग पर जैसे महानट चढता है, वैसे दु:खपूर्वक चढ़ने योग्य भी उस एक स्तम्भीय महल पर चढ़कर वह गवाक्ष में आ खड़ा हुआ। उसके बाद उसके मित्र ने फूत्कार संकेत से उस चन्दनगोघा को नीचे लाकर घड़े में रखकर वही पर किसी गुप्त स्थान में खड़ा रहा।

उस समय बड़े दीपक से प्रद्योतित भवन में अकेली उस रानी को देखकर मानों उसके मन में प्रवेश करता हो ऐसे अन्दर प्रवेश किया। पहले देखा हुआ होने से वह रानी भी मन मे महाहर्ष को धारण करती हुई, पुलकित अंग वाली बनकर उसी समय उठकर उसके आगे आकर कमल समूह से मानों उसे पूजती, बहुत कटाक्ष को फेंकती हुई हंसते मुखवाली उसने उसको इस प्रकार पुछा—हे प्राणप्रिय ! क्या आपका स्वागत हुआ ? मैं तो आपके आगमन की ही इच्छा करती हुई रही हूँ। आओ, निद्रा के लिए इस शय्या पर बैठो, मन के संकल्प विकल्पों का त्याग करो। शीघ्र इस शय्या को पवित्र करो। लम्बे काल के इस प्रेम वृक्ष को सफल करो। उसके बाद उस शयनीय पर बैठे सार्थवाह को अमृत से भी मधुर वाणी से वह कहने लगी—हे प्राणेश्वर ! जिस समय इस मार्ग से जाते हुए आपको देखा था, उसी क्षण से काम मुझे अतिशय पीडित करता है, उस बाधा (पीडा) को आप अकथनीय ही जानो। कामबाण के जाल से विद्ध संपूर्ण शरीर वाली आपकी ही चाहना करती हुई मैं न सोती हूँ, न खाती हूँ, न पीती हूँ, केवल आपके समागम रूपी अमृत को पीने की इच्छा ही मेरी बढती है। इसी कारण मन में मुझे याद-कर आप अब यहाँ आये है, वह ठीक किया। क्योंकि यह भवन राज्यभय का स्थान और मुश्किल से प्रवेश करने योग्य हैं, फिर भी उन सबको छोड़कर जो कृपा कर आप यहाँ आये हैं, वह अतीव सुंदर हुआ। जैसे आपने यहाँ आकर मेरी प्रार्थना को सफल की हैं, उसी प्रकार आप अब शीघ्र ही मेरा गाढ़ आलिंगन कर मेरे यौवन को सफल करो।

२५ भव्यात्माओं की भक्ति हिन्दो सुपात्रदान की विधि
२६ श्री चंपकमाला, श्री जगडुशाह, श्री कयवन्ना शेठ, श्री अघटकुमार चरित्र संस्कृत (श्री यतीन्द्रसूरी प्रसादी कृत)
२७ स्नात्र पूजा हिन्दी संपादन (संपादन)
२८ समाधान की राह पर हिन्दी श्रावकोपयोगी प्रश्नोत्तर
२९ समाधान की ज्योत हिन्दी साध्वाचारोपयोगी प्रश्नोत्तर
३० समाधान की रश्मियाँ हिन्दी श्रावकोपयोगी प्रश्नोत्तर
३१ स्वयंवर मंडप बना दीक्षा मंडप हिन्दी कहानियां
३२ सम्यग्दर्शन हिन्दी सम्यग्दर्शन पर लेख चिंतन
३३ नमस्कार महामंत्र हिन्दी नवकार मंत्र पर विवेचन
३४ मुक्ति नगर मां प्रवेश (पुद्गल वोसिरावचानी विधि)
३५ मुक्ति महल का राजमार्ग हिन्दी दानशील तप भाव पर
३६ साधु प्रतिक्रमण सार्थ हिन्दी (विवेचन)
३७ श्री दशवैकालिक सूत्र सार्थ हिन्दी प्रेस में साध्वाचार
३८ गच्छाचार पयन्ना. श्री राजेन्द्रसूरि प्रासादि कृत
३९ काम एवं मोह विजेता जगतो विजेता हिन्दी विवेचन
४० प्राथमिक ज्ञान माला हिन्दी बालकोपयोगी
४१ श्रमणोपासक हिन्दी द्वादशव्रत कथा सहित प्रेस में
४२ समाधान की किरणें हिन्दी साध्वाचार प्रश्नोत्तरी प्रेस में
४३ श्री द्वादश चक्रवर्ती चरित्र संस्कृत संकलन प्रेस में
४४ भवचक्र की विचित्रता हिन्दी कहानियां प्रेस में
४५ वाचकयश-वाणी स्तवन संग्रह हिन्दी
४६ नवपद देववंदन विधि हिन्दी नवपद आराधना संपादन
४७ श्रावक को क्या करना चाहिए हिन्दी संपादन श्रावक व्रत
४८ आदर्श जीवन की चाबियां हिन्दी संपादन श्रावक व्रत
४९ तपावली संपादन प्रेस में ५० दीपावली पूजन विधि संपा.
५१ श्री चम्पकमाला चरित्र भाषांतर हिन्दी

ऐसे निशान वाली पुस्तकें अप्राप्य है ।

मुनिराज श्री जयानंदविजयजी म. सा. द्वारा लिखित एवं संपादित पुस्तकें

१ आत्म स्वरूप हिन्दी चारगति के जीवों का स्वरूप
२ मुक्ति पथ के साथी हिन्दी तत्त्वत्रयी का स्वरूप
३ स्वात्म निंदा पच्चीशी हिन्दी गुजराती, आत्म निंदा
४ मुनि जीवन नी वातो गुजराती साध्वाच
५ हित चिंता के मोती हिन्दी साध्वाच
६ मुक्ति महेल नो राजमार्ग (गुजराती) दान-शील, तप, भाव पर विवेचन
७ दो प्रतिक्रमण मूल हिन्दी तृतीय आवृति
८ देववंदन सूत्र सार्थ हिन्दी संपादन
९ मुक्ति का मंगल प्रारंभ हिन्दी नियमावली तृतीय आवृति
१० दो प्रतिक्रमण मूल हिन्दी द्वितीय आवृति
११ भक्तों के उदगार हिन्दी स्तवनादि संग्रह
१२ गागर में सागर हिन्दी संख्या पर संग्रह
१३ पथ प्रदर्शक हिन्दी सुदेव सुगुरू स्वरूप
१४ प्रगति का प्रथम सोपान हिन्दी मार्गानुसारि गुण स्वरूप
१५ मुक्ति का मंगलद्वार हिन्दी नौ तत्त्व स्वरूप
१६ चिंतन की ... महामंत्र पर चिंतन
...क्रमण मूल हिन्दी
१७ प्रकरण ... संपादन
...के उदगार हिन्दी
१८ भव्यात्मा... सज्झाय संग्रह
...में सागर हिन्दी
१९ जिज्ञासा ... शंका समाधान
...र्शक हिन्दी
२० सूरिराजे... मोती) हिन्दी संकलन
...का प्रथम सोपान हिन्दी मार्ग...
२१ श्री विंशति ... संपादन हिन्दी
२२ मुनि जीवन नो मार्ग गुजराती साध्वाचार
२३ प्रभु दरिशन सुख संपदा हिन्दी जिन दर्शन पूजन विधि
२४ भक्तामर स्तोत्र गुरू गुण इक्कीसा स्वात्म निंदा पच्चीशी सह हिन्दी गुजराती, तृतीय आवृति